All Rights Reserved.

ॐ

उन्नति

प्रथम भाग

शारीरिकोन्नति

जिसको

महता रामचन्द्र शास्त्री

उपदेशक

डी. ए. वी. कालिज

लाहौर ने

बालकों के धर्म और आरोग्यतार्थ रचकर

प्रकाशित किया।

प्रथमवार १००० मूल्य ।)

बाम्बे मैशीन प्रैस लाहौर।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

* ओ३म् *

उन्नति का स्वरूप

१. मनुष्य को इसलिये सर्वोपरि माना है कि वह अपने हिताहित और धर्माधर्म को विचार कर पुरुषार्थ से उन विघ्नों को दूर कर सकता है जो कि उसकी उभयविध सुख संपत्तिमें बाधक होते हैं अन्यथा पुरुष और पशु में कुछ भेद नहीं॥

२. प्रत्येक मनुष्य के अन्तःष्करण में यह स्वाभाविकी इच्छा रहती है कि "में सदैव सुखी बना रहूं" मनुष्यमात्र इस बात का अभिलाषी है कि वह विद्यादि गुण संपन्न होकर न केवल पुरुषों में ही पुरुषोत्तम बने, प्रत्युत मरकर भी (स्वर्गीस्यांमाचनारकी) स्वर्ग सुख का पात्र बने और यही शुभ वासना ऊर्द्धगमन में प्रथम सोपान है। शुभ वासना ही मनुष्य को सत्कर्मकी प्रेरणा करती है। क्योंकि शुभवासना और सत्कर्म का घनिष्ट संबंध है। ऋषियों का सिद्धान्त है कि (स यथा कामो भवति तत्क्रतु र्भवति) मनुष्य जैसी कामना करता है तदनुकूल कर्म करता है॥

३. विशेषकर जब मनुष्य इस बात का चिन्तन करता है कि ईश्वरीय सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ मनुष्य के लिये ही नहीं, प्रत्युत प्राणीमात्र के उपकारार्थ रचागया है। और बिना किसी प्रतिफल के जगदीश्वर ने प्राणीमात्र को विशेषकर मनुष्य जाति को यह अधिकार दिया है कि वह उसकी सृष्टि में स्वच्छन्द चारी होकर न्यायपूर्वक अपने गुण कर्म और पराक्रम से यथेष्ट पदार्थों को उपलब्ध करे. जैसी कि वेद की आज्ञा है "**मनोनिविष्टमनु संविशस्वा यत्र भूमेर्जुषसेतत्रगच्छ**। अथर्व कां१३।३।९ अर्थ०—मनुष्य जहां तेरी इच्छा हो वहां जा, संपूर्ण पृथिवी तेरे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

रहने के लिये है। यथेष्ट पदार्थों को प्राप्त कर। तो फिर क्यों एक मनुष्य दूसरे स्थान में जाने के लिये अथवा अन्य यथेष्ट पदार्थ की प्राप्ति के लिये अन्य का मुख देखे। अथवा परतंत्र होकर भिक्षुक बने, जो ईश्वर आज्ञा और पुरुष प्रकृति के विरुद्ध है। एक कवि का वचन है। एता वज्जन्मसाफल्यं यदन्तायत्तवृत्तिता। ये पराधीनतां यातास्ते वैजीवन्ति के मृताः ॥

दूसरे के आधीन बृत्ति का न होना ही मनुष्य जन्म की सफलता है जो इससे वंचित हैं यदि वे जीते हैं तो मरे कौन हैं। क्यों न वह भी वे कर्म करे जिनसे स्वच्छद चारी हो निष्कंटक सुख भोगे। जिसका प्राप्त करना उसका अभीष्ठ और कर्त्तव्य है॥

पूर्वोक्त उत्कट इच्छा जैसी व्यष्टिरूप से पुरुष विशेष में पाई जाती है, वैसी ही समष्टिरूप मनुष्य समुदाय अथवा जाति में पाई जाती है ॥

प्रत्येक जाति जब अपने को दूसरों से तिरस्कृत और पद दलित देखती है जिसका देखना एक जीवित जाति में असह्य और अयुक्त है, तब उसमें प्रकृति जन अमर्ष उत्पन्न होता है कि जब तक वह उस दुःख से निर्मुक्त न हो अथवा निर्मुक्ति के लिये पूर्ण शक्ति न प्राप्त करले उसका जीवन निषिद्ध जीवन है ॥

पाण्डव जब कौरवों से बहिष्कृत होकर वन में नाना क्लेशों से क्लेशित हो रहे थे, उस समय अर्जुन ने एक बृद्ध के उत्तर में (जो उसे निर्वाण का उपदेश कर अभीष्ट से विमुख करना चाहता था) कहा कि शत्रुओं से तिरस्कृत किया हुआ मेरा हृदय अब तक नष्ट होगया होता, यदि प्रतिकारक आमर्ष मेरी भुजा का अवलंबन न होता ॥ १ ॥ मनुष्य तभी लक्ष्मी का पात्र बनता है। तभी उसका

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

यश स्थिर रहता है। उसी समय तक पुरुष पद का अधिकारी है जब तक कि वह अपने मान से नहीं गिरता ॥ २ ॥

शक्तिहीन–और सर्वतः नीचे गिरी हुई तृष्ण और मानहीन मनुष्य की गति समान है ॥ ३ ॥ (कि०)

तिरस्कृत और अवमानिन पुरुष दुःखमय जीवन व्यतीत करता है और उसका वह निन्दित जीवन मृत्यु के तुल्य है ४ ॥ (भा०)

भगवान् कृष्ण चन्द्र का कथन है कि पाओं से ताड़ित धूलि भी सिर पर चढती है तो जो देही अवमानित होकर भी क्षुब्ध नहीं होता उससे धूलि श्रेष्ठ है ॥ (शिशु०)

यह सोचकर इस दुःख से निर्मुक्त होने के लिये अथवा अपने को उन्नत करने के अभिप्राय से जो योग्य प्रयत्न किया जाता है उसका नाम पुरुषत्व अथवा उन्नतिं है और यही मनुष्य जन्म का प्रथम फल है यथाः–

(सजातो येन जातेन यातिवंशः समुन्नतिम्)

वही उत्पन्न हुआ है जिससे वंश उन्नति को प्राप्त करती है ॥

सिद्धान्त

१ अब विचारणीय यह है कि जिस अभीष्ट की प्राप्ति के लिये मनुष्य जाति की अभिलाषा रहती है, वा जिसका सिद्ध करना उसका कर्त्तव्य कर्म है उसकी उपलब्धि कैसे हो अथवा जो जाति उन्नत होना चाहती है उसका प्रथम कर्त्तव्य क्या है इत्यादिः–

२ जगत के धर्मज्ञ और नीतिज्ञ इसके प्रतिकूल नहीं कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक शत्रुओं के दूर करने के लिये निजशक्तियों को वढ़ाने की पूर्ण आवश्यकता है। कोई शारीरिक रोग दुःखदाई नहीं होसकता, यदि स्वशरीर में पूर्ण बल हो।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

कोई मानसिक दुःख दहन नहीं कर सकता यदि आत्मा बलवान हो । कोई सामाजिक दुर्घटना दुःखदायिनी नहीं होसकती यदि समाज में एकता का बल हो । जिन ज्ञातियों तथा मनुष्य समुदाय अथवा प्रत्येक पुरुष में शारीरिक बल आत्मोत्साह आत्मिक पवित्रता तथा सामाजिक एकता स्थिर रहती है किसी प्रकार का कष्ट उनके मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकता । आत्म-निर्बलता ही सब प्रकार की रोगोत्पत्ति का हेतु है । जो पुरुष आत्म शक्ति से पर्वत वत स्थिर रहते हैं वही बाह्य तथा आभ्यन्तरिक कष्टों को सहार सक्ते हैं ॥

३ धार्मिक तथा लौकिक अवस्था की पर्य्यालोचना से प्रतीत होता है कि जो जाति अपने आप में सामर्थ नहीं रखती, और दूसरों पर ही निर्भर रहकर जीना चाहती है, वह कदापि सफली भूत नहीं हो सकती ॥

अतः—सब से पूर्व निजशक्तियों का उन्नत करना अत्यावश्यक है । निज सामर्थ्य के आश्रित ही सब शक्तियां काम करती हैं ।

दैव भी उन्हीं का सहायक होता है जो अपनी सहायता आप करते हैं ॥

यह निजबल ही है जो अन्य पुरुषों को सहायक बनाता है जो वायु जंगल की प्रचंड अग्नि का सहायक होता है, वही दीपक के नाश का कारण बनता है ॥

शक्तिहीन, बलहीन, धर्महीन, स्त्री पुरुष संसार में कुचले जाते हैं । साधारण से साधारण पुरुष भी निर्बल को निगल जाता है ॥

भीष्म पितामहा का कथन है कि :—

येषां च कुले शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः ।
तेजीवन्ति सुखंलोके कुर्वन्ति चमहद्यशः ॥ महाभारत

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

जो लोग शूरवीर और धर्मात्मा होते हैं वही सुख से जीते हैं और यश के पात्र बनते हैं ॥

अतः अभ्युदय के लिये शारीरिक वल, आत्मिक शक्ति तथा आत्मोत्साह बढ़ाना चाहिये यही इसलोक और परलोक के सफल करने का मूल मंत्र है रामचन्द्र ॥

शारीरिक उन्नति प्रथम कर्त्तव्य है ॥

आर्यजाति के प्रसिद्ध वैद्य चर्काचार्या अपनी शिक्षा में बतलाते हैं कि :-

"सर्व मन्यत परित्यज शरीर मनुपालयेत् ।
तदभावेहि भावानां सर्वाभावः प्रकीर्त्तितः" ॥ च० सू० अ०

उन्नति चाहने वाले मनुष्य समुदाय का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि और सबको छोड़कर प्रथम उन्नति के मूलकारण शरीर को उन्नत करे, क्योंकि बिना शारीरिक उन्नति वा शारीरिक बलके और सबका अभाव है । वेद बतलाते हैं कि "बलंक्षत्रमोजश्च-शरीर मनु प्राविशन्" अथर्व० ११ । ४ । २३ । बल क्षत्रत्व (भयार्तों की रक्षा) और ओज (आत्मोत्साह) यह यह शरीर में प्रविष्ट हुए अर्थात् यह सब शरीर के आधीन हैं । शरीरं ब्रह्म माविशद् ऋक् सामाथो यजु० अथर्व ११ । ४ । २४ ऋक् यजु० सामाख्य ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट हुआ ॥

अर्थात् वेद भी तभी चरितार्थ होसकते हैं जब कि हमशारीरिक स्वस्था से उनका अध्ययन कर प्रचार करते हैं ॥

"प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्चया ।
व्यानो दानौ वाङ्मनः शरीरेणत ईयन्ते" अथर्व० ११ । ४

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

प्राण, अपान, व्यान, उदान, नेत्र, श्रोत्र, मन, वाणी, आदि पदार्थ तभी तक हैं जब कत कि शरीर स्वस्थ है ॥

१ निर्बल पुरुष धर्म तथा धनका उपार्जन नहीं कर सकता रोगी यथेष्ट कामनाओं को नहीं भोग सकता। अस्वस्थ परोपकार में असमर्थ होता है। रुग्ण के सन्मुख मधुर भोजन हालाहल के तुल्य होजाते हैं। निदान अस्वस्थ और निर्बल का जीवन विपज्जाल बन जाता है इसी से ऋषियों ने कहा है कि **"धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीरं साधनं स्मृतम्"** (योग०) शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन है। अतः उन्नत्यभिलाषी को प्रथम शारीरिक उन्नति करनी चाहिये ॥

बलिष्ट को कुछ दुःसाध्य नहीं ॥

महाभारत शान्ति पर्व में व्यासमुनि लिखता है कि:-

"वशेबलवतां धर्मः सुखंभोगवतामिव।
नास्त्यसाध्यंबलवतां सर्वं बलवतांशुचि म०श०अ०१३४

धर्म भी बलवानों के आधीन है जैसे भोग शीलों के लौकिक सुख बलवानों को कुछ भी दुःसाध्य नहीं बलवानों के (सम्पूर्ण **कर्म पवित्र माने जाते हैं** ॥

एक कवि ने क्या अच्छा कहा है कि :-

"नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियतेमृगैः।
विक्रमोर्ज्जितराज्यस्यस्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

सिंह को न मृगों से राज्य तिलक दिया जाता है और न कोई

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

और संस्कार किया जाता है, तथापि वह अपने विक्रम से मृगों का राजा कहलाता है सत्य है "वीरभोग्यावसुंधरा" ॥

"दिवश्चरोह पृथिवीश्चरोह राष्ट्रंचरोह द्राविणंचरोह।
प्रजाश्चरोहा मृतश्चरोह रोहितेनतन्वं सस्पृशस्व"
अथर्व १.३।१.।४

अर्थः—मनुष्य तूं सुरक्षित शरीर से द्यौलोक, पृथिवी राज्य धन, प्रजा, (संतान) और मोक्ष को प्राप्त कर। अर्थात् शारीरिक उन्नति से अन्य सब पदार्थ सुलभ होते हैं ॥

तस्मात्पुरुषोमतिमान् आत्मनः शरीरेष्वेव।
योगक्षेमकरेषु प्रयतेत विशेषेण चर्क० नि० अ० ६॥

इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि वह योग और क्षेम करने वाले अपने शरीर के लिये जो २ उपकारक योग हैं उनका यत्न पूर्वक सेवन करे क्योंकि शरीर ही पुरुष का मूल है॥

ब्रह्मचर्य शारीरिक उन्नति का प्रथम साधन है॥

अब प्रश्न यह है कि वह कौन से प्रयोग हैं जिनसे शारीरिक उन्नति होती है। इसका उत्तर देते हुए भगवान् चरकाचार्य लिखते हैं ॥

ना वीर्यं कुरुते किंचित्सर्वावीर्यकृता क्रियाः।

वीर्यहीन कुछ नहीं कर सकते क्योंकि संपूर्ण क्रिया वीर्य से ही सिद्ध होती है। इसी की पुष्टि में याज्ञवल्क्य लिखते हैं॥

असिद्धं तं विजानीयान्नरं ह्यब्रह्मचारिणम्।
जरामरण संकीर्णं कायक्लेश समन्वितम्॥ या०। सं०

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

ब्रह्मचर्य न रखने वाला मनुष्य किसी कार्य में भी कृतकार्य नहीं होता, क्योंकि वह अकाल में ही जरा और मृत्यु का ग्रास बन जाता है। और नाना प्रकार के क्लेशों से युक्त होता है॥

तस्मातपुरुषोमतिमान् आत्मनः शरीरमनुरक्षनशुक्र मनुरक्षेत्। पराह्येषा फलनिवृत्तिराहारस्येति। तथा हि आहारस्य परंधाम शुक्रंतद्रक्ष्यमात्मनः। क्षयेह्यस्य बहून् दोषान् मरणं चाधिगच्छति॥ च०। नि०। अ० ६

इसलिये मतिवान् पुरुष को उचित है कि अपने शरीर की रक्षा करने वाले वीर्य की रक्षा करे। कारण यह है कि वीर्य ही आहार का परम फल है। जैसे कहा है कि आहार ही वीर्य का परम धाम है वीर्य के क्षीण होने से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं यहां तक कि मृत्यु भी होजाती है॥

१ ब्राह्मणों का वचन है कि (ब्रह्मचारी न कांचनार्त्ति मृच्छति) ब्रह्मचारी को किसी प्रकार का रोग नहीं होता॥

क्योंकि शुक्र ही शरीर में ऐसा सार है, जो कि प्रत्येक अंग को पुष्ट और दीप्ति युक्त बनाता है जैसा कि चरक में वर्णन किया है॥

रसइक्षौ यथादध्निसर्पिस्तैलन्तिलेयथा।
सर्वत्रानुगतं देहेशुक्रंसंस्पर्शने तथा॥च०चि०अ० २

जैसे ईक्ष में रस दही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहता वैसे ही वीर्य भी सब देह में तथा त्वचा में रहता है॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

दूसरे स्थान में वीर्य की सारता और उसके गुण इस प्रकार प्रतिपादन किये हैं ॥

शुक्रसार (परिपक्व वीर्य) वाले पुरुष विद्या, ज्ञान, धन और संतति से भरपूर होते हैं। सब लोग उनका सन्मान करते हैं। वह सौम्य और सौम्यता से देखने वाले होते हैं। दूध से भरे हुए नेत्रों की तरह अत्यन्त हर्ष युक्त होते हैं वह अत्यन्त सचिक्कण (दृढ़) चित्तसार संपन्न होते हैं। उनके दान्त एक दूसरे से मिले हुए सुशोभित होते हैं। उनका वर्ण और स्वर प्रफुलित और स्निग्ध होता है। वह कांतिमान होते हैं, उनके नितंव बड़े२ होते हैं अर्थात् शुक्रसार वाले पुरुष स्त्रियों के प्रिय और बलवान् होते हैं ॥

च० वि० अ० २ ॥

अथर्व वेद में ब्रह्मचर्य की यहां तक महिमा की गई है कि ब्रह्मचारी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सबका पालन करता है क्योंकि पूर्वोक्त चरक के कथनानुसार उसके संपूर्ण अंग प्रत्यंग स्वस्थ और बलिष्ठ होते हैं जिससे उसमें ऐसी शक्ति आजाती है ॥

१—आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।

२—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत् ॥

३—ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद्बिभर्त्तितस्मिन्देवा अधि-विश्वेसमोताः । प्राणापानौ जनयन्नाद्व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधां ब्रह्मचर्य से ही आचार्य बनता है, और ब्रह्मचर्य से ही राज्य का अधिकारी बनता है ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

२—ब्रह्मचर्य और तप से ही विद्वान लोग मृत्यु को जीतते हैं ॥

३—ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् चारों वेदों को धारण करता है ॥

ब्रह्मचारी में संपूर्ण दिव्यगुण निवास करते हैं (अथवा) उसके संपूर्ण इन्द्रिय पुष्ट होते हैं । संपूर्ण विद्वान् उससे मित्रता करते हैं । ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य से ही प्राण अर्थात् दीर्घ जीवी बन, क्लेशों का नाश, संपूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र मन, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ बुद्धि को धारण करके सब मनुष्यों के लिये संपूर्ण विद्याओं का प्रकाश करता है । एवं ऋगवेद में भी ब्रह्मचर्य्य से ही अपनी उन्नति, अपनी परिवारिक उन्नति, चिरस्थायित्व, शारीरिक और अध्यात्मिक बल का होना लिखा है ॥

तांई वर्द्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं निमातरा नयाति रेतसेभुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नामतृतीयमाधिरोचनेदिवि ॥

ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५५।

जो माता पिता अपने पुत्र के वीर्य बढ़ाने के लिये, और भोग ऐश्वर्य प्राप्ति के कारण, अत्यंत पुरुषार्थ से सब ओर से बढ़ाते हैं । अर्थात् उत्तम ब्रह्मचर्य, पूर्णविद्या, उत्तम शिक्षा, और युवावस्था को प्राप्त करा विवाह कराते हैं । तब माता पिता की उत्तेजना से सुशिक्षित पुत्र प्रकाशमान सूर्य मंडल के ऊपर नीचे

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

और उत्कृष्ट तीसरे नाम को तथा निरंतर मान वाले माता पिता को धारण करता है। अर्थात् वह न केवल स्वयं ही ब्रह्मचर्य बल से विद्या, भोग तथा धर्मार्थ काम मोक्ष को प्राप्त करता है, प्रत्युत अपने माता पिता के नाम को सूर्य के तुल्य चमत्कृत करता है।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्यत्रातुरवृलस्यमीढुषः।
यःपार्थिवानित्रिभिरिद्विगामभिरुरुक्रमिष्टोरुगायजीवसौ

जो विविध प्रशंसायुक्त (त्रिभिः) सत्व रज तमो गुण केसाथ अथवा उत्तम विद्या, सुशिक्षा और युवावस्था के साथ वा ऋग यजु साम के साथ, बहुत प्रशंसित जीवन के लिये पृथिवी से उत्पन्न हुए २ पदार्थों को प्राप्त होता है। उस रक्षा करने वाले, समर्थ, जितेन्द्रिय वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के ब्रह्मचर्य से उत्पन्न हुए पुरुषार्थ की हम प्रशंसा करते हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य दीर्घ जीवी होकर सुख, भोग तथा विद्या, धन, धर्म, योगाभ्यासादि से बल को उपलब्ध कर सकता है अन्यथा नहीं॥

चतुर्भिः साकंनवतिंचनामभिश्चक्रंनवृत्तांव्यतींरविविपत।
बृहच्छरीरो विमिमानऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्॥

जो विशेषता से धातुओं की बृद्धि का निर्मान करता हुआ (बृहच्छरीरः) बड़े बली और स्थूल शरीर वाला (अकुमारः) अर्थात् पच्चीस वर्ष की अवस्था वाला (युवा) युवावस्था को प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी अकेला ही युद्ध में अनेक मनुष्यों को गोल चक्र के तुल्य भ्रमाता है, और वह प्रशंसनीय गुण कर्म्म से बुलाने योग्य होता है॥ स्वा० द० भा०

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

ऊपर के मंत्र में वेदने यह बात दरशायी है कि जो पुरुष पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त अपने धातु तथा शरीर को बढ़ाता है,वही विजयी होता है। अब हम इस की व्याख्या वैद्यक वाक्यों से करते हैं कि ब्रह्मचर्य्य (वीर्यरक्षा) से ही धातु तथा शरीरादि की वृद्धि होती है। और पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त वीर्यरक्षा का कारण क्या है, क्योंकि यह तत्त्व सम्यग्तया वैद्यक से ही प्रकट होसकता है॥

वैद्यकमतानुसार अवस्था तीन प्रकार की है। अर्थात स्त्री हो या पुरुष प्रत्येक की तीन अवस्था होती हैं। अर्थात १बाल्यावस्था, २ मध्यावस्था और ३ वृद्धावस्था जैसे सुश्रुत में "वयस्तु त्रिविधं बालं मध्यं वृद्धमिति ॥ ४८ ॥ तत्रो न षोड़श वर्षा बालास्तेऽपि त्रिविधाः । क्षीरपाः क्षीरान्नादाः, अन्नादा इति तेषु संवत्सरपराः क्षीरपाः, द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः । परतोऽन्नादाः ॥४९॥ इति

अर्थ–अवस्था तीन प्रकार की हैं । बाल्य, मध्य, और वृद्ध। सोलह वर्ष से कम बाल कहलाता है, उस के तीन भेद हैं। दूध पीने वाले, दूध और अन्न दोनों का आहार करने वाले, और अन्न खाने वाले । उन में एक वर्ष की अवस्था तक दूध पीने वाले, दो वर्ष पर्य्यन्त दूध और अन्न, इस के अनन्तर अन्न खाने वाले॥

षोड़श सवत्सरोनन्तरे मध्यवय स्तस्य विकल्पो वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता हानिरिति ।तत्रा विंशतेर्वृद्धि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

शत्रिंशतो यौवनं, आचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रिय बलवीर्य संपूर्णता अत ऊर्ध्वमीषत् परिहानिर्यावत्सप्ततिरिति ॥ ५० ॥

सोलह वर्ष की अवस्था से लेकर सत्तर वर्षपर्य्यन्त मध्यावस्था कहलाती है । और उस मध्यावस्था के चार भेद हैं । १ वृद्धिः, २ यौवन ३ संपूर्णता और ४ हानि अर्थात् घटाव । इस में बीस वर्ष पर्य्यन्त वृद्धिः अर्थात् सर्व धातु बढ़ती हैं। तीस वर्ष की अवस्था तक यौवन (जवानी) चालीस वर्ष की अवस्था में संपूर्ण धातु इन्द्रिय बल और वीर्य की परिपूर्णता होती है । इस के उपरान्त सत्तर ७० वर्ष की अवस्था पर्य्यन्त कुछ २ घटाव होने लगता है ॥

(यहां चरक में ७० के स्थान में साठ लिखा है ।)

सप्ततेरुर्ध्वं क्षीयमाण धात्विन्द्रिय बलं वीर्योत्साह महन्यहनि बली पलितखालित्यजुष्टं कासश्वास प्रभृतिभिरुपद्रवैरभि भूयमानं सर्व क्रियास्वसमर्थं जीर्णागारमिवाभिवृष्ट मवसीदन्तं वृद्धमाचक्षते ॥ ५१ ॥ सु० श्रु० सू० अ० ३५

सत्तर वर्ष की अवस्था के ऊपर सब धातु, इन्द्रिय, बल, वीर्य, और उत्साह प्रतिदिन क्षय होता जाता है। त्वचा में बल पड़ जाते हैं। संपूर्ण केश श्वेत होजाते हैं, तथा गिर जाते हैं। खांसी, दमा आदि उपद्रवों से पीड़ित होकर सर्व कार्य्यों में असमर्थ होजाता है । जैसे जीर्णगृह मेघ बरसने से गिर जाता है, एवं जीर्ण अवस्था वाले को वृद्ध कहते हैं ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

इसी प्रकार वागभट्ट अ० ३ श्लो० १०५ में

वयस्त्वा षोड़शाद्बालं तत्र धात्विन्द्रियौजसां ।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रा वृद्धि परं क्षयः ॥ ५२ ॥

सोलह वर्ष तक बाल्यावस्था होती है। उस में धातु इन्द्रिय बल की वृद्धि होती है। और सत्तर वर्ष तक मध्यावस्था होती है वहां वृद्धि नहीं, सत्तर वर्ष के उपरान्त धातु इन्द्रिय का क्षय होने लगता है। और इसी प्रकार चरक विमान स्थान अध्याय ८ में प्रतिपादन किया है।

बाल्यावस्था में संपूर्ण धातु अपरिपक्व होती हैं। मूछ डाढ़ी आदि चिन्ह भी प्रकट नहीं होता है। इस अवस्था में शरीर सुकुमार क्लेश सहने के अयोग्य और अपूर्ण बल होता है और धातु कफ प्रधान होती है। और यह सोलह वर्ष तक रहती है। तीस वर्ष की अवस्था पर्य्यन्त धातु बढ़ती रहती हैं, मन प्रायः चञ्चल रहता है। मध्यावस्था में बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण शक्ति, धारण शक्ति, स्मरण शक्ति, वचन शक्ति, ज्ञान शक्ति और संपूर्ण धातुओं के गुण पूर्ण होते हैं। पित्त प्रधान होता है॥

यह अवस्था साठ वर्ष पर्य्यन्त रहती है। साठ वर्ष के उपरान्त संपूर्ण धातु, इन्द्रिय, बल, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण शक्ति, धारण शक्ति, स्मरण शक्ति, वचन और विज्ञान शक्ति क्षीण होने लगती है। धातु अपने २ गुण का परित्याग करने लगती हैं बात प्रबल होजाती है और इस तरह सौ वर्ष पर्य्यन्त वृद्धावस्था रहती है। पूर्वोक्त कथनानुसार बाल्यावस्था में अर्थात् पच्चीस वर्ष से पूर्व

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

जब कि मनुष्य की धातु इन्द्रिय और वीर्य अपरिपक्व होता है। विवाह करना वा स्त्रीसङ्ग करना हानिकारक और अधर्म्म है। इस से मनुष्य को नाना प्रकार के रोग और अकाल मृत्यु होती है, क्योंकि शुक्र ही आयु और आरोग्य का दाता है। इसलिये सुश्रुत कारने लिखा है॥

पञ्च विंशेततोवर्षे पुमान्नारीतु षोड़शे।
समत्वागत वीर्य्यौतौ जानीयात्कुशलो भिषक्।५३

पच्चीस वर्ष की अवस्था में पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री सम और पूर्ण वीर्य वाले होते हैं ऐसा चतुरवैद्यको जानना चाहिये।

इस में सन्देह नहीं कि बाल्यावस्था में भी वीर्य बीजरूप से होता है, परन्तु वह अल्प और अपरिपक्व अवस्था में होता है, इसी लिये उस अवस्था में बालक को कुमार कहा जाता है अर्थात् "कुत्सितो मारोयस्य सः" बहुत थोड़ा है मार अर्थात् काम जिस के और इस अपरिपक्व अवस्था में वीर्य का ह्रास करना प्रकृति नियम के विरुद्ध और हानि कारक है॥ अतएव

वैद्यों (डाक्टरों) ने सिद्धान्त किया कि

नतौं वै षोड़शाद्धर्षात्सपतत्यापरतो न च।
आयुष्कामोनरः स्त्रीभिः संयोगं कर्त्तुमर्हति॥५४॥
अति बालोह्यसं पूर्ण सर्वधातुः स्त्रियो व्रजन्।
उप तप्येत सहसा तड़ाग मिव काजलम्॥५५॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

शुष्करूक्षं यथा काष्टं जन्तु जग्धं विजर्जरम् ।
स्पृष्ट माशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥५६

जो दीर्घ जीवी होना चाहता है, वह सोलह वर्ष से पूर्व और सत्तर वर्ष पीछे स्त्री सहवास न करे ॥

बाल्यपन में धातु अपरिपक्व होती हैं, इस से उस अवस्था में स्त्रीसङ्ग करने से मनुष्य का वीर्य ऐसे सूक जाता है, जैसे ग्रीष्मऋतु में थोड़े जल का सरोवर ॥

वृद्ध पुरुष अर्थात् सत्तर वर्ष के उपरान्त स्त्रीसहवास करने से मनुष्य ऐसा विशीर्ण (नष्ट भ्रष्ट) होजाता है, जैसे कीड़ों से खाया हुआ पुराणा काष्ट हाथ लगाने से ही टूट जाता है ॥

अतः हमारी धर्म संस्था में प्रत्येक बालक को आठ वर्ष से पच्चीस वर्ष तक विद्या ध्ययनार्थ ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करके आचार्य्य के पास रहने की आज्ञा है । जिस का प्रस्ताव द्वितीय साधन विद्योन्नति में किया जावेगा ॥

तीसरी अवस्था में गृहस्थ त्याग कर वानप्रस्थ धारण और चतुर्थी में संन्यास धारण का विधान है । जिस के अनुष्ठान से हमारे पूर्वज दीर्घ-जीवी और सम्पूर्ण सुख सम्पति का आधार भूत थे । और जिस के परित्याग से आज हम लोग उन दुःखों के पात्र बन रहे हैं जिन का अन्य जाति के मनुष्यों में होना असम्भव गिना जाता है ॥

इस समय तो आर्य्य (हिन्दु) जाति की विचित्र और शोधनीय अवस्था होरही है । जहां एक तरफ कई एक स्वार्थी और धर्म तत्त्व से पराङ्मुख लोग जिन अपने उदर पूर्ति के

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

कारण वा मिथ्या पुण्य के भाव से दो २ और चार २ वर्ष की कन्याओं को अपनी अङ्क में ले वेदी में स्वयं फेरे लेते दिखाई देते हैं वहां दूसरी ओर एक साठ वर्षका वृद्ध डाड़ी मुड़वा और मुख को कालाकर (वसमालगा) धनदान से एक आठ वा दशवर्ष की कन्या का पाणि ग्रहण कर दूसरे ही वर्ष अपनी स्वाभाविक मृत्यु से दोनों कुलों को कलंकित करता है।

क्या इस से अधिक भी कोई पापाचार होसकता है । वैद्यक का सिद्धान्त हैं । कि :–

वयोरूप गुणोपेतां तुल्यशीलां गुणान्वितां ।
अभिकामोऽभि कामांतु हृष्टोहृष्टामलं कृताम् ॥५७

अर्थात् पूर्ण षोड़श वर्ष की अवस्था वाली रूपगुणों से युक्त तुल्य शीलगुण युक्त कामना करने वाली हर्ष युक्त स्त्री से काम युक्त पुरुष संग करे अर्थात् तुल्य वीर्य और योग्य अवस्थावाले स्त्री पुरुष सहवासकरें। जैसा कि पूर्वोक्त सुश्रुत के अनुसार दरशाया गिया है कि सोलह वर्ष की स्त्री और पच्चीस वर्ष का पुरुष तुल्य वीर्य और युवा होते हैं । इसी का समाधान वाग भट्ट ने भी किया है कि जब सोलह वर्ष की अवस्थावाली स्त्री पूर्ण युवा वस्थावाले पुरुष से सहवास करती है तो ।

वीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः ।
रोग्यल्पायुरधन्वो वा गर्भो भवति नैव वा ॥५८॥

अष्टांग० शा० अ०१

वीर्यवान (सामर्थ वाले) पुत्रको उत्पन्न करता है । और

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

यदि इस से न्यून वर्षों में स्त्री सहवास करे तो रोगी अल्पायु निर्धन दरिद्री पुत्र उत्पन्न होता है, अथवा गर्भ उपजता ही नहीं ऐसा ही सुश्रुत कारने भी सिद्ध किया है यथा :—

ऊन षोड़श वर्षायामप्राप्तः पंच विंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥५९॥
जातो वा न चिरंजीवेत् जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः ।
तस्माद त्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥६०

सु० श० अ० १० श्लो० ६७–६८

सोलह वर्ष की अवस्था से छोटी स्त्री पच्चीसवर्ष से न्यून पुरुष यदि गर्भाधान करे,तो वह गर्भ प्रथम तो कुक्षि में ही नष्टहोजाता है, यदि बालक जन्मे भी तो चिर कालतक नहीं जीता । यदि जीवे तो दुर्बल इन्द्रिय और निसत्त्व होता है । अतः बाला अर्थात छोटी स्त्री में गर्भाधान नहीं करना चाहिये ।

यही कारण है कि अन्य जाति के लोग जिनका युवा वस्था में विवाह होता है हमारी अपेक्षा दीर्घजीवी बड़े शरीरवाले, विद्वान उत्साह युक्त और ऐश्वर्यशाली है ।परन्तु एक हम ही हैं जो अल्पायु दरिद्री निसत्त्व विद्यादिगुणों से हीन और नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित हो रहे हैं। देशाभिमान हम में नहीं जात्याभिमान हम में नहीं धर्माभिमान हंम में नहीं योग और क्षेमकी शक्ति हम में नहीं क्योंकि हम वीर्य हीन हैं और (नावीर्यं कुरुते किंचित्सर्वावीर्य कृता क्रिया) वीर्य हीन कुछ नहीं करसकते क्योंकि सर्व क्रिया वीर्य से ही सिद्ध होती है ।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

परन्तु स्मरण रखिये हमारे पूर्वजों की यह दशा न थी, एकदा जब श्री रामचन्द्र जी महाराज इस चिन्तन में थे कि कौन समुद्रपार जाकर श्री सीता जी की सुध लावे और किस प्रकार वह कृतकार्य हो तो उस समय सब को हताश देखकर आबाल ब्रह्मचारी हनुमान जी ने खड़े होकर श्री रामचन्द्र जी को कहा ?

किं प्राकार विहारतो रणवन्तीं लङ्कामिहैवानये।
किं वा सैन्यसमुद्धितं च सकलंतत्रैवसं पादये॥६१
हेलां दोलिन पर्वतो च्चशिखैर बंध्नामिवारांनिधिं।
देवाज्ञापय किंकरोमि सकलं दोर्दंडसाध्यंहिमे ॥६२

हनुमान ना०

अर्थ—भगवन् क्या मुझे आज्ञा है कि मैं उस अलंकृत लङ्का को प्राकार के साथ ही उठाकर आपके सन्मुख लाऊं। वा रावण की उन्मत्त सेना को वहां ही नष्ट भ्रष्ट कर दूं अथवा क्रीड़ा मात्र से ऊंचे पर्वतों को उखाड़कर समुद्र को बांध दूं (अय देव आज्ञा करें। मैं क्या करुं क्योंकि यह सब क्रिया करने को मेरी एक भुजा ही समर्थ है। अर्थात् आपको यदि यह सन्देह हो कि " मैं विना साधन के यह महान् कार्य कैसे सिद्ध करसक्ता हूं " तो महाराज मेरा बाहुबल ही इसके लिये पर्याप्त है।

सत्य है (वशे बलवतां सर्वं) सम्पूर्ण सिद्धियें बलवानों के अधीन हैं।

एक कविका वचन है कि (वीरभोग्यावसुं धरा) वीर पुरुष ही धनधान्य से परिपूर्ण पृथिवी को भोगते हैं, जिसका एक चमकता हुआ उदाहरण हनुमान नाटक में दरशाया है॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

विजेत व्याल्का चरणतरणीयो जलनिधिः ।
विपक्षः पौलस्त्योरण भुविसहायाश्चकपयः ॥ ६३॥
तथाप्येको रामः सकलमपिहन्ति प्रतिबलं ।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥६४॥

लंका जैसे देश को जीतना, पाओं से समुद्र को तैरना, रावण जैसे शत्रु से युद्ध, और अपने सहायक वनमानुष (एक साधारण वानरजातिः) परन्तु तब भी अकेले श्री रामचन्द्र जी ने शत्रुओं का नाश किया। क्योंकि महान पुरुषों की सम्पूर्ण क्रिया सिद्धि सत्त्व के आधीन होती है न कि उपकरणों के।

इसमें सन्देह नहीं कि क्रिया सिद्धि में उपकरणों (साधनों) की आवश्यकता है। परन्तु स्मरण रहे कि साधन भी सत्त्व के आधीन होते हैं।

वनानिदहतो वन्हेः सखाभवतिमारुतः ।
स एवदीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥६५॥

वन को दग्ध करते हुए प्रचण्ड अग्नि का जो वायु सखा (सहायक) होता है वही दीपक के नाश करने का हेतु बनता है, क्योंकि निर्बल का कोई मित्र नहीं होता ॥

यदि महाराजा रामचन्द्र जी बाली आदि के बध से अपना बाहुबल न प्रकट करते तो किस तरह सुग्रीव अपनी सेना समेत उनका सहायक बनता। बहुतसी मनुष्यगणना का होना अथवा देश के दीर्घव्यायासादि का होना निरर्थक होता है। यदि उसके निवासी निसत्त्व और निर्वीर्य हैं ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

साद्धं दशभिः पुत्रैर्भारं वहतिंगर्दभी ।
एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपितिनिर्भयम् ॥६६॥

गर्द भी अपने दश पुत्रों के साथ दूसरों का भार उठाती है, परन्तु सिंही एकही वीर पुत्रको उत्पन्न कर वन में निर्भीक सोती है। और ऐसे वीर पुत्र के उत्पन्न करने का एकमात्र उपाय पूर्ण ब्रह्मचर्य्य है जैसाकि हमने अष्टांग हृदय के शारीरिक अध्याय १ श्लोक ९ के अनुसार बतलाया है, "कि पच्चीस वर्ष का पुरुष सोलह वर्ष की स्त्री में गर्भाधान करके वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न करें ॥

---

* प्रथम ब्रह्मचर्य्य किसे कहते हैं *

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासुसर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥६७॥पा०सं०

पूर्ण अवस्था पर्यन्त मन वचन और कर्म से सर्वथा मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

क्या मन और वचन से भी मैथुन कियाजाता है ? इस सन्देह को दूर करने के लिये ऋषियों ने दरशाया है कि मैथुन आठ प्रकार का होता है ॥

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥६८॥ दक्षस्मृतिः—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

स्त्रियों का स्मरण, कीर्त्तन, इनके साथ क्रीड़ा, टिकटिकी लगाकर देखना। एकान्त में बात करना, निश्चय, प्राप्ति का उद्योग और क्रिया यह आठ प्रकार का मैथुन है। अर्थात् उपर्युक्त आठ प्रकार के कारणों से मनुष्य का वीर्य स्खलित होता है॥

काम को मनोज अर्थात् मन से उत्पन्न होने वाला कहा है और सम्पूर्ण संकल्प विकल्प का मूल मन है जब ब्रह्मचारी किसी स्त्री सम्बन्धी कथा सुनता है अथवा स्त्री का स्मरण करता है, तो अवश्य उसके मन में वह संस्कार वीज रूप से स्थिर होकर स्वप्नावस्था में वीर्य स्खलन का हेतु होगा। अतएव बड़े ऋषियों का कथन है कि।

न भाषयेत् स्त्रियं कांचित् पूर्व दृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत् तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥६९॥
(पा० सं०)

स्त्री संभाषण न करे, न पूर्व देखी हुई का स्मरण करे। स्त्री सम्बन्धी कथाओं का परित्याग करे, और स्त्रियों की चित्रित मूर्त्ति को न देखे॥

महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्मपितामह ने ब्रह्मचर्य की उत्तमता बतलाकर कहा।

सुदुष्करं ब्रह्मचर्य मुपायं तत्रमे शृणु।
संवृत्तमुदीर्णं च निगृह्णी याद्द्विजो रजः ॥७०॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

योषितो न कथा श्राव्या न निरीक्ष्या निरांबराः ।
कथं चिद्दर्शनादासां दुर्बलानां विशेद्रजः ॥७१॥

भा० शां० अ० २१४

ब्रह्मचर्य व्रत अति कठिन है, परन्तु उसका उपाय यह है कि स्त्री सम्बन्धी कथाओं को न सुनें। और न नग्न स्त्री का दर्शन करे। क्योंकि उनके दर्शन से दुर्बलों के अन्तःकरण में रजोगुण (राग) उत्पन्न होजाता है।

इसीलिये ब्रह्मचर्य व्रत के आरम्भ में ब्रह्मचारी को उपदेश दिया जाता है॥

मैथुनंवर्जय स्वमिन्द्रियमोचनम् ।
आचार्याधीनो भवान्यत्र धर्माचरणात् ॥७२॥

३ गो० गृ० अ० ३ ।

आठ प्रकार के मैथुन का त्याग। काम से अपनी इन्द्रियों को विषयों में मतलगा। आचार्य के आधीन हो बिना अधर्माचरण के। अतएव मनु ने लिखा है कि :-

एकः शयीत् सर्वत्र नरेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ।
कामाद्धिस्कन्दयन् रेतो हिनस्तिव्रतमात्मनः ॥७३॥

मनु० अ० २

ब्रह्मचारी अकेला सोवे, किसी प्रकार से भी वीर्य का पात न करे। क्योंकि इच्छापूर्वक वीर्य त्याग करने से अपने व्रत का नाश करता है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

एवं मानव गृह्य सूत्र में :—

न मुषितां स्त्रियं प्रेक्षेत । न विहारार्थे जल्पेत् ॥
सर्वाणिसांस्पर्शिकानि स्त्रीभ्योवर्जयेत ॥७४॥

मानव गृह्य सू० खं० १ । सू० ८ । ९ । ११

किसी नग्न स्त्री को न देखे, न स्पर्श करे, न स्मरण करे। काम योग सम्बन्धी कथन श्रवणादि भी न करे। स्त्री से सम्पूर्ण प्रकार के स्पार्शिक भावों को अर्थात् देखना छूना आदि का परित्याग करे।

और यह व्रत अठतालीस छत्तीस और पच्चीस वर्ष पर्यन्त (ब्रह्मचर्य व्रत करे) इसी को उत्तम मध्यम और निकृष्ट कहा गया है ॥

और ऐसा ही कन्याओं के लिये भी ॥

ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानं विन्दते पतिम् ॥

अथर्व कां० ११ । अ० ३

कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से जवान पति को प्राप्त करे। अर्थात् वर वधु दोनों पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से युवावस्था को प्राप्त होकर विवाह करें ॥

इस समय अज्ञानान्ध लोग सत शास्त्रों को तिलांजलि देकर बाबा वाक्यं प्रमाणम् के अनुसार सात और आठवर्ष, नहीं२ इस से भी न्यून अवस्थावाली कन्याओं को गौरी और तुलसी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

रूप से विवाह कर अपने आपको पुण्यात्मा समझने लगे (जो कि वास्तव में पापाचार है) इस लिये उन वाक्यों की जिनसे यह सर्व नाशिक प्रथा चली, समालोचना करनी आवश्यक प्रतीत होती है। क्योंकि मनुका सिद्धान्त है कि ॥

आर्षधर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना
यस्तर्केणानुसंधत्ते सधर्मं वेदनेतरः ॥१॥

मनु० आ०

ऋषि प्रणीत ग्रन्थों और धर्मोपदेशों को जो वेदानुकूल तर्क से निश्चय करता है वही धर्म को जानता है दूसरा नहीं।

प्रत्यक्षंचानुमानञ्च शास्त्रञ्च विविधागमं।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सिता ॥२॥

मनु० अ०

धर्म की शुद्धि चाहने वाले को चाहिये कि वह प्रत्यक्ष अनुमान और विविध शास्त्रों को जाने ॥

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो धर्मनिर्णयः।
युक्ति हीन विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ॥३॥

मनु०

केवल एक शास्त्र के आधार पर ही धर्म का निर्णय नहीं करना चाहिये। युक्ति हीन विचार में धर्म की हानी होती है॥

इस समालोचना करने से प्रथम यह दरशादेना आवश्यक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

है कि धर्म निर्णय में प्रत्येक वेदानुयायी आस्तिक के लिये तो यह प्रमाण ही उपयुक्त है कि :—

यावेदवाह्याः स्मृतयोयाश्च काश्चकुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाःप्रोक्ता स्तमोनिष्ठाहिताःस्मृताः।

मनु० अ०

अर्थात् जो स्मृतियें वेदप्रातिकूल हैं वह सम्पूर्ण निष्फल अन्धेरे में लेजाने वाली और त्याज्य है। क्योंकि (वेद प्रणिहितोधर्मोऽधर्मस्तिद्विपर्ययः) वेद प्रति पादित धर्म और तद्विपरीत अधर्म है।

परन्तु वे लोग (जिनके मत मे शायद संस्कृत अक्षरों में लिखी हुई प्रत्येक बातधर्म मानी जाती है) इस प्रमाण को स्मरण रक्खें॥

विरोधोयत्रवाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसां।
तुल्यप्रमाण सत्त्वेतु न्यायएव प्रवर्त्तकः ॥१॥

गो० गृ० सू० भाष्ये

जहां वाक्यों में बिरोध हो वहां बहुत प्रमाणिक होते हैं,और जहां तुल्य हों वहां न्याय (युक्ति) वर्त्तना चाहिये ॥

बाल विवाह में मुख्य प्रमाण पंडित काशीनाथ का दिया जाता है ॥

अष्ट वर्षाभवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षाभवेत्कन्या ततऊर्ध्वं रजस्वला ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

माता चैवपिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति कन्यां दृष्ट्वा रजस्वलाम् ॥

अर्थ—आठ वर्ष की कन्या गौरी संज्ञावाली होती, नव वर्ष की रोहिणी, दश वर्ष की कन्या और इस के उपरान्त रजस्वला होती है। जो माता पिता तथा भ्राता कन्या को रजस्वला देखते हैं वह तीनों नरक में जाते हैं॥

तात्पर्य यह निकाला जाता है कि दश वर्ष से प्रथम ही कन्या का विवाह करदेना चाहिये॥

समीक्षा। इस में अनेक दोष हैं जो वेद विरुद्ध और युक्ति विरुद्ध हैं यथाः—

तमस्मेरायुवतयोयुवानंमर्मृज्यमानाःपरियन्त्यापः।
सशुक्रेभिशिक्कभिरेवदस्मेदीदायानिध्मोघृतनिर्णिगप्सु॥

ऋ० मं० २ सू० ३५

जो उत्तम ब्रह्म चर्यव्रत और विद्याओं से युक्त अत्यन्त युवावस्था वाली कन्यायें (जैसे नदियें समुद्रको प्राप्त होती हैं) वैसे ही अपने से अधिक अवस्थावाले युवापति को प्राप्त होती हैं। और जवान ब्रह्मचारी परिपक्ववीर्य और शुभगुणों से युक्त होकर हमारे मध्य मे अत्यन्त श्रीयुक्तं कर्म और अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे॥

जैसे अन्तरिक्ष में वा समुद्र में जल के शोधन करने वाला स्वयं प्रकाश मान विद्युत् वा अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष परस्पर के उत्कट आनन्द से उत्तम सन्तान और आनन्द

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

को प्राप्त हों अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य के उपरान्त युवा वस्था में (जो कि स्त्री की सोलह वर्ष और पुरुष की पच्चीस वर्ष में होती है) विवाह करें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें ॥

यही सिद्धान्त संपूर्ण सद्ग्रन्थों और स्मृतियों में पाया जाता है ॥

अनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ॥ गो० गृ० सू० अ०३ सू०३

ब्रह्मचर्य व्रत के उपरान्त गुरू की आज्ञा से स्नानकर समावर्त्तन संस्कार करे ॥

लक्षण प्रशस्तान् कुशलेन ॥ पारस्कर–स्कं० ६ सू० १

लक्षणवती अर्थात् स्त्री लक्षणों से युक्त स्त्री से विवाह करे॥ ऐसा ही मनुने भी प्रतिपादन किया है ॥

: स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेद् द्विजो भार्यां सवर्णांलक्षणान्विताम् ॥

मनु० अ०

गुरू से आज्ञा पा स्नान करके विधिपूर्वक निवृत्त हुआ २ समान वर्णवाली और लक्षण युक्त अर्थात् स्त्री लक्षणों से युक्त स्त्री से विवाह करे। यहां लक्षणवती कहने से स्त्री के बंध्यात्वादि दोषों की निवृत्ति का तात्पर्य है जिनकी परीक्षा बिना युवावस्था के असम्भव है ॥

जैसे स्मृतियों में पुरुष के मूत्रादि की परीक्षा और स्त्री लक्षणों की परीक्षा का विधान है । वैसे ही वैद्यक में शुद्ध शुक्र और शुद्ध रक्त की भी परीक्षा के चिन्ह बतलाये हैं । अतएव

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

आपस्तंब गृह्य सूत्र खण्ड तीसरे में जहां स्त्री के दोष बतलाये हैं, वहां साथ ही यह भी दरशाया है कि स्त्री गुप्त न हो। अर्थात् स्त्री योग्य स्त्रियों द्वारा उसके अङ्ग असङ्ग की परीक्षा करालेवे॥

इसमें न्याय यह है कि विवाह का उद्देश्य योग्य सन्तान का उत्पन्न करना है। सन्तान उत्पत्ति विना ऋतु काल के असम्भव है और ऋतु वैद्यक मतानुसार द्वादश वर्ष से प्रथम होता नहीं। जिसका समाधान अष्टांग हृदय में इस प्रकार किया है॥

मासिमासिरजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्
वत्सराद्द्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतंक्षयम्॥

अष्टां० शा० अ० १

प्रति मास में रस से उत्पन्न होने वाला रज स्त्रियों का तीन दिन तक स्रवता रहता है। वह रज द्वादश वर्ष की अवस्था के उपरांत स्रव ने लगता है और पचास वर्ष की अवस्था में उसका अन्त होजाता है अर्थात् फेर नहीं होता॥

और विना ऋतु काल के स्त्री संसर्ग अधर्म है जैसाकि :—

अनृतौ गच्छन् संप्रदुष्येत्। विष्णुस्मृतिः॥

बिना ऋतु काल के स्त्री संसर्गी दूषित होता है॥

एवंमनुः (ऋतुकालाभिगामीस्यात्) मनुः अ० ३

ऋतु काल में स्त्री संग करे। आगे मनुः अध्याय आठ में

त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेत कुमारी ऋतुम तीसती।
ऊर्ध्वंतु कालादेत स्माद्विन्देत्सदृशं पतिम्॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

काम मामरणा त्तिष्ठेत गृहे कन्यर्त्तुम तीसती ।
नँ चेवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनायकर्हिंचित् ॥

मनुः अ० ९

कन्या तीनवर्ष ऋतुमती होकर अर्थात् छत्तीस ऋतु व्यतीत कर इसके अनन्तर अपने योग्य पति को वरले । आगे पिता के लिये आज्ञा है कि कन्या ऋतुमती होकर भी जन्म भर पिता के घर में अविवाहिता रहे । परन्तु अयोग्यवर को कन्या न देवे ॥ इत्यादि

अब अष्ट वर्षाभवेद्गौरी वालों से पूछना चाहिये कि आपका कौन वाक्य सत्य मानें। आप कहते हैं कि दशवर्ष से प्रथम विवाह करना उत्तम है (जो वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध है, क्योंकि वहां तो पूर्वोक्त(तमस्मेरा युवतयो युवानं)के कथनानुसार न केवल युवावस्था है प्रत्युत अत्यन्त युवावस्था वाली अर्थात् वीस वर्ष से भी उपरान्त अवस्था वाली का विवाह लिखा है। आप कहते हैं " दशवर्ष से उपरान्त रजस्वला होजाती है, परन्तु वैधक में बाहर वर्ष के उपरान्त रजस्वला होना लिखा है। आपका उपदेश है कि रजस्वला के विवाह से दाता का नरक वास होता है परन्तु मनु आदिकों के मत में तीन वर्ष रजस्वला रहकर भी विवाह होना लिखा है ॥

हां एक श्लोक मनुस्मृति में आता है जिस पर प्रायः बाल विवाह के प्रेमी अपनी पुष्टि मानते हैं । कि देखो मनु में लिखा है कि :—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मेसीदति सत्त्वरः ॥

तीस वर्ष की अवस्था वाला पुरुष मनोहरणी बारह वर्ष की कन्या से विवाह करले अथवा चौवीस वर्ष का आठवर्ष की कन्या से विवाह करले धर्म के नष्ट होने पर शीघ्र ही ॥

समीक्षा, प्रथम तो यदि इस श्लोक को मनूक्त ही मान लिया जावे तब भी गौरी आदि के मानने वालों का पक्ष सिद्ध नहीं होता क्योंकि वह तो इस विवाह को पुण्य मानते हैं, परन्तु इस श्लोक में तो एक आपद् धर्म बतलाया है जैसाकि (धर्मेसीदति सत्त्वरः) के पाठ से प्रकट होता है ।

अर्थात् यदि किसी आपत्ति का सन्देह हो जिस से धर्म की हानी होती हो (जैसे कि मुसलमान राजाओं के समय में बलात्कार हिन्दु कन्याओं को हराजाता था) तो उस समय (सत्त्वरः) अर्थात् शीघ्र ही पूर्वोक्त अवस्था में विवाह करले। अन्यथा नहीं। यहां (धर्मेसीदति) और (सत्त्वरः) शब्द इसका पूर्ण आदर्श हैं विशेषकर (सत्त्वरः)जिसका अर्थ जलदी या काहली करना है जो कि किसी नियत समय से प्रथम कार्य में ही सम्यक् उपयुक्त होता है॥

दूसरा हेतु—आपका तो सिद्धान्त है कि रजस्वला वा दशवर्ष से ऊपर की अवस्थावाली का विवाह नरक में लेजाने वाला है परन्तु इस श्लोक के तो पूर्वार्द्ध में ही लिखा है कि तीस वर्ष का वर बारह वर्ष की कन्या से विवाह करे। जो कि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

आप के कथनानुसार और वैद्यक मतानुसार रजस्वला होती है। तब तो आपके पूर्वोक्त सिद्धान्त का खण्डन हुआ॥

तीसराहेतु—मनुके कथन से कि (या वेद वाह्य) जो स्मृति वेद अनुकूल नहीं वह त्याज है। यह श्लोक अनादरणीय है क्योंकि इस का भाव वेद प्रतिकूल है॥

चौथाहेतु। पूर्वोक्त (विरोधो यत्रवाक्यानां प्रामाण्यं तत्रभूयसां)के सिद्धान्तनुसार। और(श्रुतिस्मृतिविरोधेतु श्रुतिरेवगरीयसी) अर्थात् जहां श्रुति (वेद) और स्मृति का विरोध हो वहां श्रुति बलवती होती है। आपका सिद्धान्त निर्मूल और त्याज्य है॥

सब से आश्चर्य जनक बात तो यह है कि यह संज्ञा अर्थात् " आठ वर्ष की गौरी होती है " इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों के विरुद्ध है। सत्य है (सर्वस्यलोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्धएवसः) अर्थात् शास्त्र ही सब का लोचन है जो इस नेत्र से हीन हैं वे अन्धे हैं॥

गृह्य सूत्रों में (जो कि शीघ्र बोध के कर्त्ता पं० काशीनाथ से कई शताब्दी के प्राचीन हैं) यह संज्ञा इस प्रकार वर्णन की है॥

अप्राप्ता रजसोगौरी, प्राप्तेरजसि रोहिणी।
अव्यञ्जिता भवेत्कन्या, कुचहीना च नग्निका ॥१॥

गो० गृ० अ० २ श्लो० ७८

अर्थात् जबतक कन्या को ऋतुधर्म नहीं आता तबतक वह गौरी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

संज्ञिक होती है, रजके आने पर रोहिणी, व्यंजनों से रहित कन्या और कुचहीन नग्निका कहलाती है ॥

अब बताइये कि आपकी नव वर्षा वाली रोहिणी का विवाह हो अथवा रजस्वला रोहिणी का ? ॥

बाल विवाह के अनुयायियों से एक और प्रमाण भी दिया जाता है और जिसकी व्याख्या में कई एक विश्वासियों ने पौराणिक छाया से बाल विवाह सिद्ध करने की चेष्टा की है। वह यह सूत्र है ॥

नग्नातु श्रेष्ठा । गो गृ० प्र० ३ कां ४ सू० ६

नग्निका श्रेष्ठ है । अर्थात् नग्निका का विवाह करना श्रेष्ठ है । उपर्युक्त सूत्र पर भाष्यकार ने नग्निका का लक्षण इस प्रकार किया है ॥

यावन्न लज्जाशीलिनी कन्या पुरुष सन्निधौ ।
योन्यादिनावगूहेत तावद् भवति नग्निकाइति ॥

जब तक कन्या पुरुषों के समीप लज्जावती न हो और अपने गुप्तांगोंको न ढांपे । उस समय तक नग्निका कहलाती है । अर्थात् जबतक कन्या को अपने गुप्ताङ्ग ढांपने की भी समझ न हो उस समय उसका विवाह करना उत्तम है ॥

क्यों न उस देश का सत्यानाश हो जहां ऐसे २ अनर्थ हों । पंजाबी में एक कहावत है कि (ऊठ चालीस और टोडा पैंतालीस) एक ओर तो आठ, दश वर्ष की कन्या का विवाह बताते हैं तो दूसरी ओर छः वर्ष अर्थात् नग्निका का क्योंकि

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

कोई कन्या आठ वा नव वर्ष की न होगी जो अपने गुप्तांग को न ढांप सक्ती हो ॥

परन्तु हर्ष है कि ग्रन्थ कर्त्ताने आगे चलकर स्वयं ही इसका लक्षण करके पूर्वोक्तभाव का निराकरण कर दिया जैसे :—

नग्निकांतु वेदत्कन्यां यावन्न ऋतुमतीभवेत् ।
ऋतुमतीं त्वनग्निकां तां प्रयच्छेत्त्वनाग्निकाम् ॥
गो० गृ० प्र० २ सू०१७

कन्या जबतक ऋतुमती न हो तबतक नग्निका संज्ञावाली होती है । और ऋतुमती होने पर अनग्निका कहलाती है, इस लिये अनग्निका अर्थात् ऋतुमती का विवाह करे ॥ इसी की पुष्टि में :—

नाजात लोम्न्यो पहासमिच्छेत् । गो०गृ०प्र०३कां०५
अजातव्यंजनालोम्नी न तया सह संविशेत् ।
कत्यायन०

व्यंजन अर्थात् स्त्री लक्षणों से हीन और अलोम्नी गुप्त लोमों से रहित स्त्री से संसर्ग न करे । इत्यादि दोषों को अनुभवकर के ही इस समय कई एक विद्वानों ने अपनी लेखनी उठाई और अष्टवर्ष के अर्थ खींचातानी से सोलह वर्ष के किये । परन्तु हमारी सम्मतिमें तो इस खेंचातांनी की अपेक्षा उस निर्मूल और सर्व नाशक सिद्धान्त को त्याग देना ही अत्युत्तम है ॥

यद्यपि इस में अनेक प्रमाण तथा हेतु दिये जासक्ते हैं परन्तु विस्तार भय से यही आदर्शमात्र दिखलाकर पाठकों से निवेदन किया जाता है कि विना बाल विवाह के त्याग के प्रत्येक प्रकार की उन्नति दुःसाध्य और असम्भव है ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

क्योंकि शारीरिक उन्नति से ही मनुष्य आयुष्मान् बलवान् विद्वान् तेजस्वी तथा अन्यान्य इष्ट विषयों में सम्पन्न हो सक्ता है, जैसा कि चरक संहिता के विमान स्थान अध्याय आठ में प्रतिपादन किया है ॥

चिकने कोमल सूक्ष्म और अनेक मूलों वाले स्थिर वाल, ऊंचा मस्तक, ठिगने तथा ऊपर को ऊंचे बड़े और असन्त मांस वाले दोनों कान, प्रकटरूप, कृष्ण और श्वेत भागवाले नेत्र, आगे से ऊंची और बड़े श्वास लेने वाली पुष्ट, कोमल तथा समान नासिका, लाल और बाहिर को न निकले हुए दोनों होंठ, बड़ी और अधिकता से रहित दोनों दाड़ें, घनरूप चिकने कोमल स्पर्श वाले स्फेद और समान दन्त, लाल विस्तृत और महीन जीभ, मांस वाला, बड़ा चिबुक। ठिगनी तथा घन और गोल ग्रीवा, ऊंचे तथा पुष्ट दोनों स्कन्ध। दाक्षिण की ओर से आवर्त्तवाला, गूढ़ नाभिवाला, और सम्यक् प्रकार से ऊंचा उदर। सूक्ष्म, लाल, और ऊंचे नखोंवाला, स्निग्ध और ताम्र तथा लम्बी और छिद्र से रहित अंगुलियों वाला विस्तृत हाथ, तथा पैर। गूढ़वंशवाला, और बड़ा पृष्ट। गूढ तथा दृढ़ सन्धियां। कृपणता से रहित घण्टा की न्याईं पीछे तक शब्द करने वाला स्वर। स्निग्ध तथा स्थिर कान्तिवाला वर्ण। स्वाभाविक स्थिर, और विपत्त काल में भी विकार को न प्राप्त होने वाला, बलिष्ठ, उत्तरोत्तर क्रम से क्षेत्र के तुल्य, क्षेत्र और गर्भादि दोषों से रहित ज्ञान विज्ञान से युक्त शरीर, श्रेष्ट होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण गुणों से युक्त शरीर सौ वर्ष की आयु वाला होता है, और इसी में ऐश्वर्य्य तथा मनोवांछित भाव प्रतिष्ठित रहते हैं ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

देखो अष्टांग हृदय शारीरिक अध्याय १।

इसी प्रकार सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय तीन में (गूढ संधिशिरास्नायुः) इत्यादि बतलाकर आगे (पंचविंशे०) बतलाया कि यह सब गुण पुरुष की पच्चीस और कन्या की सोलह वर्ष की अवस्था में गर्भाधान करने से होते हैं॥ एक पुरुष ने अपने ब्रह्मचर्य बल से ही यह आव्हान दिया था कि :—

ऋतुकालाभिगामीस्याद्द योग्याहार परायणः।
शंकां माकुरूभद्रेत्वं यदिवैद्यवंशगो भवेत्॥

जो पुरुष पूर्णब्रह्मचर्य के अनन्तर ऋतुकालाभिगामी होता है। और योग्य आहार करता है, अय कल्याणवाली तू कभी सन्देह भी मतकर कि वह पुरुष वैद्य के वश में जावेगा। अर्थात् वह रोगी नहीं होसकता। इसलिये सम्पूर्ण सुखसम्पत्ति के निदान स्थान शारीरिकोन्नति के लिये उसके मूलभूत ब्रह्मचर्य की रक्षा करना ही प्रथम कर्त्तव्य है॥

तस्मात्पुरुषोमतिमानात्मनः शरीरमनुरक्षन्
शुक्रमनुरक्षेत्॥ च० नि० अ० ६

—०—

* प्रयोग २ दिनचर्य्या *

—:०:—

शारीरिक उन्नति का दूसरा प्रयोग दिनचर्या है। अर्थात् नियत समय पर उन नियमों का अनुष्ठान जिन से शारीरिक स्वस्थिता और धर्म की वृद्धि होती है। क्योंकि बल तीन प्रकार का होता है॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

जैसे—त्रिविधं बलमिति,सहजं, कालजं,युक्तिकृतं च।
सहजं यच्छरीर सत्त्ववयः प्राकृतं, कालकृतं ऋतु
विभागजं, वयः कृतं च। युक्तिकृतं पुनस्तदा-
हार चेष्टा योगजम् ॥ च० सू० अ० ८

अतएव—

आहारचार चेष्टासु सुखार्थं प्रेत्यचेह च।
परं प्रयत्नमातिष्टेद्द बुद्धिमान् हितसेवने ॥

च० सू० अ० ८

बल तीन प्रकारका होता है।सहज,कालकृत,(स्वाभाविक)और युक्तिकृत। (स्वाभाविक) जो माता पिता के रजवीर्य से मिलता है, कालकृत, जो आयु वृद्धि के साथ। और युक्तिकृत्त अर्थात् जो आहार आचार व्यायामादि से उत्पन्न किया जाता है॥ इसलिये हित चाहने वाले बुद्धिमान को चाहिये कि वह अपने आहारादि की ओर विशेष दृष्टि दे॥

(१)प्रथम ब्राह्म मुहूर्त्त में चार घड़ी रात रहते उठकर मलमूत्र का साग करना, इसी को धर्मशास्त्राकारों और वैद्योंने आयु रक्षाका प्रथम साधन माना है और प्रसेक की वृद्धि के लिये उपदेश किया है॥

भगवान् सुश्रुताचार्य अनागत दुःखों से निर्मुक्ति के नियम बतलाते हुए लिखते हैं॥

उत्थायोत्थायसततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

धीमता यदनुष्ठेयं तत्सर्वं प्रविचक्षते ॥

सु० चि० अ० २४

आरोग्यता की इच्छा करने वाले बुद्धिमान पुरुष को नित्य प्रातःकाल उठते ही जो करना चाहिये अब उनका वर्णन करते हैं यह लिखकर प्रथम नियम जो लिखा है सो यह है कि:-

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येतस्वस्थोरक्षार्थ मायुषः ।

स्वस्थ मनुष्य को आयु की रक्षा के लिये ब्राह्ममुहूर्त्त में जाग उठना चाहिये ॥ और यही अक्षर भाव प्रकाश प्रकर्ण४ खण्ड प्रथम में पाये जाते हैं ॥

वागभट्ट (अष्टांग हृदय में) इस प्रकार प्रतिपादन किया है ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्त(उत्तिष्टेत बुध्येत)स्वस्थोरक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्यकृत शौचविधिस्ततः ॥

अष्टांग० सू० अ० २

मनुष्य अपनी आयु की रक्षार्थ ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे और मल मूत्र का त्याग कर शौच करे ॥ एवं मनु अध्याय ४ में भी (ब्राह्मेमुहूर्त्ते) की आज्ञा पाई जाती है । स्वयं वेदभगवान् भी इस विषय में ऐसा ही उपदेश करते हैं ॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्र मस्थात् । आयती मग्न उषसंविभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणा ॥ ऋ० मं० ३ अ० ५ सू० ६१

हे विद्वान् जनो ! जो उत्तम धन करने वाली, जिससे सत्य विद्यमान् है प्रकाश से उत्पन्न हुई वेला, सूर्य से जानी जाती है, पृथिवी और अन्तरिक्ष को अच्छे प्रकार स्थिर करती है। उस

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

आती, और प्रकाश करती हुई (उषसं) प्रभात वेला को प्राप्त होकर (उठकर) समाधिसे जगदीश्वर की प्रार्थना करते हुए आप उत्तम प्रशंसनीय धन को प्राप्त हो ॥ एवं

ब्राह्म मुहूर्त्त मैं उठकर मल मूत्र का त्याग करना—

आयुष्य मुषसिप्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।
तदंत्र कूजनाध्मानोदरगौरव वारणम् ॥

सु० चि० अ० २४

सवेरे मलमूत्र का त्याग करना आयु को बढ़ाता है। आंतो की गुड़गुड़ाहट पेट का फूलना, उदर रोग, तथा भारी पन को दूर करता है ॥

मलादि के रोकने से नाना प्रकार के रोग उपजते हैं जैसा कि सम्पूर्ण वैद्यों का मत है ॥

आरोपश्लौपरिकर्त्तिताचसंगःपुरीषस्यतथोर्द्धवातः।
पुरीषमार्गादथवानिरेतिपुरीषवेगेनिहितेननरस्य ॥
वातमूत्रपुरीषाणां संगोऽध्मानं क्रमोरुजा ।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातानिग्रहात् ॥२॥
वस्तिमेहनयोः शूलंमूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ।
विनामोघं क्षणा नाहः स्यालिंग मूत्र विनिग्रहे ॥

सु० चि० अ० २४

पुरीष के रोकने से पेटका आफरना शूल, मलकारुकना, वायुका ऊर्द्धगामी होना, तथा मलमार्ग से मल का साफ न निकलना आदिदोष होते हैं ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

अधो वायु के रोकने से वायु मूत्र, मल, रुकजाते हैं पेट फूलजाता है, ग्लानी और सिरदरद होता है तथा, उदर में अन्य वायु के विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥

मूत्र के रोकने से निम्नरोग उपजते हैं वस्ति और लिंग में पीड़ा मूत्र कृच्छ, सिरदर, और नलों आदि के नाना रोग उपजते है ॥ और यह ग्राम से दूर होना चाहिये यथाः—

दूरादावस्थानं दूरात्पादा व सेचनं ।
उच्छिष्टान्न निषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥ ४ ॥

मनु० अ० ४

अनन्तर शौच करना चाहिये ।

गुदादिमलमार्गणां शौचंकान्ति बलप्रदम् ।

सु० सू०अ २

मल त्याग के अनन्तर गुदादि मलमार्गों को धोना चाहिये, इस से कान्ति और बलकी वृद्धि होती है ॥

इस के अनन्तर दन्त धावन (दातन) करना चाहिये ॥

तद् दौर्गन्ध्योप देहौतु श्लेष्माणं चापकर्षति ।
वैशद्यमन्नाभि रुचिं सौमनस्यं करोति च ॥१॥

सु० सू० अ०२४

दातौन करने से मुख की दुर्गंधी दांतों की मैल तथा कफ दूर होता है, उज्ज्वलता, अन्नपर रुचि, और सौमनस्यता प्राप्त होती है ॥

दातन के अनन्तर अभ्यंग मर्दन (मालिश करना) ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जराश्रम वातहा ।
दृष्टि प्रसाद पुष्टयायुः स्वप्नसुत्वक्दार्ढ्यकृत् ॥

नित्य अभ्यंग (मालिश) करना चाहिये। क्योंकि मालिश बुढ़ापा परिश्रम, और बात को हरता है। दृष्टि की स्वच्छता, पुष्टि, आयु, त्वचा की सुन्दरता, और दृढ़ करता है ॥

शिरः श्रवण पादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ।

अष्टां० सू० अ० २ ॥

सिर कान और पाओं में विशेषकर मालिश करनी चाहिये ॥

क्योंकि पैरमें मालिश करने से कठोरता रूक्षता आदि दोष दूर होते हैं ।

अभ्यंगोमार्दवकरः कफवातनिरोधनः ।
धातूनां पुष्टि जनको मृजार्णव बलप्रदः ॥
सेकः श्रमघ्नोऽनिलहृद्भग्नसंधि प्रसाधकः ।
क्षताग्निदग्धाभिहत विघृष्टानां रुजापहः ॥
जलसिक्तस्यवर्द्धन्ते यथा मूलेंऽकुरास्तरोः ।
तथाधातु विबृद्धिर्हिस्नेह सिक्तस्य जायते ॥

सु० चि० अ० २४ ॥

शरीर पर मालिश करने से शरीर मृदु (कोमल) होता है। कफ और वायु का नाश होता है। धातु पुष्ट होती है। शुद्ध रूप, और बल की प्राप्ति होती है ॥

स्नेह से श्रम, तथा वायु का नाश होता है, सेक टूटी हुई अस्थि को जोड़ता है। क्षत, और अग्नि से दग्ध हुए को हित कारी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

होता है । (विघृष्ट) रगड़ की पीड़ा को दूर करता है जैसे वृक्ष के मूल में पानी देने से उस के अंकुर बढ़ते हैं । इसी प्रकार स्नेह से सींचे हुए मनुष्य की धातु बढ़ती हैं ॥

शिरोगतांस्तथा रोगान् शिरोऽभ्यंगोऽपकर्षति ।
केशानां मार्दवंदैर्घ्यं बहुत्वंस्निग्ध कृष्णता ॥१॥
करोति शिरसस्तृप्तिं सुत्वक्त्वमपि चालनम् ।
संतर्पणं चेन्द्रियाणां शिरसः प्रतिपूर्णम् ॥

सु० चि० अ० २४.

सिर में तेल लगाने से शिर के रोग दूर होते हैं । वाल नरम होते हैं बढते हैं । वहुत घने और काले होते हैं ॥

मालिश सिर की(दिमाग की)तृप्ति करती है,शिर की त्वचाको सुन्दर बनाती है । रक्त का संचार करती है,इन्द्रिय और शिरको पूर्ण करती है ॥

मालिश के लिये यद्यपि सरसों का तेल उत्तम और गुण कारी है परन्तु सुश्रुत कारने शिर में लगाने के लिये एकविशेष तेल लिखा है ॥

मधुकं क्षीर शुक्लाच सरलं देवदारु च ।
क्षुद्रकं पंचनामानं समभागानिसंहरेत ॥

सु० चि० अ०२४

१. मुलठी २ क्षीर विदारी ३ सरल देवदारु तथा लघु पंचमूल अर्थात (विदारीगंध बृहती पृष्णिपर्णी करेरी गोखरू) इनका नाम पंचलघुमूल हैं देखो च० चि० अ० १ इन सब को

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

समभाग लेवे। इनके क्वाथ और कल्क में चक्रतैल (कोल्हू में पीड़ा हुआ स्फेद तिलों का तेल) पकाके पुनः ठंढा कर नित्य शिर में मालिश करनी चाहिये ॥

व्यायाम।

पुनः व्याम (कसरत) करे। इस से (व्यायाम से) शरीर हृष्ट पुष्ट और निरालस्य रहता है ॥

व्यायाम का लक्षण और गुण इस प्रकार बतलाया है ॥

शरीरायासजननंकर्म व्यायामसंज्ञितं।
तत्कृत्वातु सुखंदेहं विमृद्नीयात्समंततः ॥३४॥
शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वंलाघवंमृजा ॥३६॥
श्रमक्लम पिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥३७॥
न चास्तिसदृशं तेन किं चित्स्थौल्याप कर्षणं।
नचव्यायामिनंमर्त्यमर्द्दयन्त्यरयोभयात् ॥३७॥
न चैनंसहसाक्रम्यजरासमधि रोहति।
स्थिरीभवतिमांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥३९॥

शरीर में थकान पैदा करने वाले कर्म को व्यायाम कहते हैं, व्यायाम करने से शरीर सर्वथा सुखपूर्वक सुडौल होजाता है ॥३५॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

शरीर बढ़ता है, शरीर में कान्ति (सौन्दर्यता) आती है। अङ्गों का सुन्दर विभाग होता है। अग्नि (जठराग्नि) बढ़ती है आलस्य नष्ट होता है। स्थिरता,हलकापन और शुद्धि होती है॥३६॥

व्यायाम से थकावट, तृष्णा, सरदी, गरमी आदि के सहने की शक्ति होती है। और परमारोग्यता आती है ॥ ३७॥

अति स्थूलता के कम करने का व्यायाम के तुल्य कोई उपाय नहीं है। कसरत करने वाले पर शत्रु भय से आक्रमण नहीं करसक्ते ॥ ३८ ॥

कसरती पर जल्दी से बुढ़ापा नहीं आता। और मांस दृढ़ होता है ॥ ३९ ॥

व्यायामक्षुण्ण गात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगाइव ॥ ४० ॥
वयोरूप गुणैर्हीन मपिकुर्यात्सुदर्शनम् ॥

सु० चि० अ० २४

व्यायाम से थककर पाओं में मालिश करने वाले के समीप रोग नहीं आते, जैसे सिंह के पास क्षुद्र मृग नहीं आते ॥ ४० ॥

व्यायाम, अवस्था रूप और गुण हीन को भी सुन्दर बना देता है ॥

व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपिभोजनम्।
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषंपरिपच्यते ॥

सु० चि० अ० २४

नित्य कसरत करने वाले को विरुद्ध भोजन भी कच्चा हो अथवा पक्का सुखपूर्वक पचजाता है ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

एवं अष्टांग हृदय सू० अ० २ में।

लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्त घनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥

व्यायाम से शरीर का हलकापन, कर्म करने में सामर्थ्य, अग्नि का दीप्त होना, मेदकाक्षय, अङ्गों की विभक्तता, तथा पुष्टि, होती है। व्यायाम शीत और वसन्तऋतु में विशेषता से करना चाहिये। दण्ड, गतका, कुशती, कबड्डी, आदि देशी खेलें, और फुटबाल, टैंबल आदि विदेशी खेलें उत्तम हैं। और समर्थों के लिये घोड़े की सवारी अत्युत्तम है ॥

स्नान।

उपर्युक्त क्रिया करके स्नान करना चाहिये। धर्म शास्त्रों में स्नान के अनेक गुण बतलाये हैं॥ यथा

निद्रा दाहश्रमहरं स्वेद कण्डुतृषापहं।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ ५५ ॥

स्नान, निद्रा, दाह तथा श्रम का नाशक है। स्वेद, कण्डु (खारश) और प्यास को दूर करता है। हृदय को हितकर है। मल के हरने वाला है सम्पूर्ण इन्द्रियों का शोधक है ॥ ५५ ॥

तंद्रा (ऊंघना) तथा पाप का नाश करने वाला है। तुष्टि प्रदाता है पुरुषत्व के बढ़ाने वाला, रुधिर को स्वच्छ करने वाला, और जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है ॥ स्नान स्वस्थता में ताजे ठण्डे जल से करना चाहिये ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

अञ्जन लगाना।

(१) स्नान करके नेत्रों में अञ्जन लगाना चाहिये। अञ्जन नेत्रों के अनेक रोगों को दूर करता है॥ जैसे–

मतं द्योतोंजनं श्रेष्टं विशुद्धं सिन्धु संभवं।
दाहकण्डु मलघ्नं दृष्टिक्लेदरूजापहम् ॥ १४ ॥
अक्षणो रूपावहं चैव सहते मारुतातपौ।
न नेत्ररोगा जायन्ते तस्मादंजनमाचरेत् ॥१५॥

सु० चि० अ० २४

मुख धोकर अथवा स्नान करके अञ्जन लगाना चाहिये। सिन्धु नदी का उत्पन्न हुआ निर्मल सुरमा अर्थात् काला सुरमा श्रेष्ट है॥

सुरमा–दाह, (जलन) खुजली, तथा नेत्रों की मलको नष्ट करता है। दृष्टि के क्लेद और रोगों को नाश करता है॥ १४॥

नेत्रों को सुन्दर बनाता है। नेत्रों में वायु और धूप की सहन शक्ति उत्पन्न होती है। नेत्रों में कोई रोग नहीं होता। इसलिये नित्य अञ्जन लगाना चाहिये॥ एवं चरक में भी—

सौवीर मंजनं नित्यं हितमक्षणोः प्रयोजयेत्।
पंचरात्रेऽष्टरात्रेवा स्रावणार्थें रसांजनम्॥
न हिनेत्रामयं तस्य विशेषात् श्लेष्मतोभयम्॥

च० सू० अ० ६

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

सौवीरांजन नेत्रों के लिये बहुत हितकारक है। इसलिये दोनों नेत्रों में लगाना चाहिये ॥

पांचवी या आठवी रात्रि को नेत्रों से जल निकालनेके लिये रसौंत का लेप करना चाहिये। इसके अनुष्ठान से किसी प्रकार का नेत्र रोग नहीं होता। विशेषकर श्लेष्मा से तो भय ही नहीं होता ॥

पक्ष्मलं विशदेकान्त ममलो ज्ज्वल मंडलं।
नेत्रमंजन संयोगात् भवेच्चामलतारकम् ॥

सु० चि० अ० २४

अञ्जन से नेत्र असन्त उज्ज्वल और सुन्दर होते हैं।

इसी की पुष्टि में वागभट्ट ने अञ्जन का अनुष्ठान बतलाकर लिखा है कि "मनुष्य के नेत्र आग्नेय रूप होते हैं। उनमें विशेष कर कफ का भय रहता है। इसलिये नेत्रों से जल निकालने को सातवें दिन रात्रि रसांजन अर्थात् दारू तथा हल्दी के क्वाथ से उत्पन्न हुए रसको नेत्रों में लगाना चाहिये ॥

यह सब प्रथमान्ह में करना चाहिये। यथा—

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दंतधावनमंजनं।
पूर्वान्ह एवकुर्वीत् देवतानां च पूजनम् ॥

मनु० अ० ४

—o—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

* वस्त्रों का साफ रखना *

कदाचिन्नजनैः सद्भिर्धार्यमलिनमंबरं ।
तच्चु कण्डुकृमिकरं ग्लान्यलक्ष्मी करम् ॥
भा० खं १ पृ० ८० ॥

श्रेष्ठ पुरुषों को कभी मलीन वस्त्र नहीं धारण करने चाहिये क्योंकि मलीन वस्त्र खाज–तथा जूं पैदा करते हैं । ग्लानिकारक और दरिद्री करने वाले होते हैं ॥

—०—

आहार ।

इसके उपरान्त शारीरिक उन्नति तथा आयु रक्षा का सब से उत्तम प्रयोग आहार है अर्थात् नियत समय पर योग्याहार का खाना ।

योग्याहार तृप्ति कारक, बल प्रदाता, आयु–तेज–उत्साह–स्मृति तथा आंत को बढ़ाता है । क्योंकि (आहारमूलाश्च प्राणिनः) अन्न प्राणियों का प्राण–और शरीर का आधार है ॥

समस्त वैद्यों का सिद्धान्त है किः—

त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नोब्रह्मचर्य मिति ॥
एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरु पस्तब्धमुपस्तम्भैः ।
शरीरं बल वर्णोपचयोपचितमनुवर्त्तते ॥
च० सू० अ० ११

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

आहार शयन ब्रह्मचर्यै र्युक्त्या प्रयोजितैः ।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ॥

अर्थात् जैसे आगार (गृह) की स्थिरता के लिये स्तम्भ होते हैं, इसी प्रकार शरीर की रक्षार्थ आहार, शयन, और ब्रह्मचर्य तीन स्तम्भ हैं । इन्हीं के युक्त अनुष्ठान से स्तब्ध शरीर पूर्ण आयु तक ठैहर सक्ता है । इन में भी प्रथम स्थान आहार को दिया गया है क्योंकि आहार से ही रस रुधिर आदिकों की उत्पत्ति है ॥ सुश्रुताचार्य का सिद्धान्त है कि:—

विरुद्ध रसवीर्यादींन् भुंजानोऽनात्मवान् नरः ।
व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यंमरणंचाधि गच्छति ॥

सु० सू० अ० २६ ॥

जिन-रस वीर्यादिकों में विरोध, हो उनके खान पान से मनुष्य नाना रोग-इन्द्रियों की दुर्बलता, तथा मृत्यु को प्राप्त करता है ॥

ऐसे ही चर्काचार्य ने भी—

विरुद्ध वीर्याशन निन्दित व्याधिकारणम् ।

विरुद्ध वीर्य वाले पदार्थों का अनुष्ठान निन्दित व्याधियों का कारण बतलाया है ॥

अतः—यस्त्वाहारं शरीरस्य धातु साम्यकरंनरः ।
सेवते विविधाश्चान्या चेष्टाः ससुखमश्नुते ॥

च० नि०

जो मनुष्य रस रुधिरादि की साम्यता रखने वाले, आहार तथा अन्य शारीरिक चेष्टाओं को करता है वह सुखको भोगता है अन्यथा दुःख ॥ क्योंकि—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।
दुःख संज्ञिकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥
च० सू० अ० ९

धातुओं की विषमता का नाम रोग और साम्यता का नाम प्रकृति अथवा अरोग्यता (सुख) है । और जो पदार्थ शरीर में विकार न करने वाला स्वाभाविक नियत है वह सात्म्य कहलाता है ॥

तत्रैकान्तहितानि जाति सात्म्यात् सलिल घृत दुग्धौदन प्रभृतीनि एकान्ताहितानि दहन पचन मारणादिषु प्रवृत्तान्यग्नि क्षारविषादीनि ॥
सु० सू० अ० २० ।

हितकारी जैसे जल, घी, दूध और गेहुं आदि मनुष्य के लिये सात्म्य हैं । और जलाने पचाने मारणे में प्रवृत्त अग्नि क्षार विष आदि अहित हैं । पुंस्त्व के नाशकों में क्षार अधिक नाशक है ॥

इस आहार विधि का अर्थात् सात्म्य असात्म्य का पूर्ण ज्ञान स्त्री जाति को होना आवश्यक है । क्योंकि हमारी प्रथा में अन्न की अध्यक्ष स्त्री जाति है । परन्तु इस समय प्रायः भारत की अशिक्षित स्त्रियें अपने हिता हित को न जानकर जब गर्भवती होती हैं, तो सड़ा हुआ अन्न और कोला मट्टी आदि के खाने से अनेक कुपथ्य करती हैं जिनका दुष्परिणाम सन्तान के जीवन पर होता है । इत्यादि दोषों से बचने के लिये ऋषियों ने दरशाया कि :—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

कटुकनित्यादुर्बल मल्पशुक्रमनपत्यंवा ।
तिक्तनित्याशोषिणमबल मपाचितं वा ॥

च० शा० अ० ८ ।

नित्य चरपरा खाने वाली गर्भवती स्त्री बलहीन वीर्यहीन और आगे जिसकी सन्तान नहो ऐसी सन्तान पैदा करती है ॥

और नित्य कटु खाने वाली धातुशुष्क, निर्बल, और अति कृश पुत्र को उत्पन्न करती है ॥

अतः अन्न जल घी आदि सबकी परीक्षा करके स्वयं पाकविधि करे । और इस बात की परीक्षा करे कि क्या पथ्य हैं और क्या अपथ्य है इत्यादि । हित जैसे–

दुग्धं स्वादु रसं स्निग्ध मोजस्यं धातुवर्द्धनम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलम् ॥

भा० प्र० अ० ४

दूध रस से स्वादिष्ट, स्निग्ध, सामर्थ्य वाला, धातु उत्पादक वात पित्तहारक वीर्यवर्द्धक कफकारक, भारी और शीतल है ॥

गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्य मग्निकृत् ।
स्वादुपाककरं शीतं वातपित्त कफापहम् ॥
मेध्यलावण्य कान्त्योजस्तेजो वृद्धिकरंपरं ।
अलक्ष्मी पाप रक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ५ ॥
बल्यं पवित्र मायुष्यं सुमंगल्यं रसायनं ।
सुगंधं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥

भा० प्र० खं० १

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

गोका घी नेत्रों को विशेषकर हितकारी, वृष्य, अग्निप्रदीपक, पाक में मधुर शीतल, वात, पित्तनाशक, बुद्धि, लावण्य, कांति, ओज तथा तेज की बृद्धि करने वाला, आयुस्थापक, भारी, बलवर्द्धक, पवित्र, मंगलरूप रसायन, सुगन्धी वाला रुचि के उत्पन्न करने वाला, सुन्दर और सम्पूर्ण घृतों में उत्तम है ॥

अहितजैसे मलिन अन्न, जूठा, बासी, सड़ा हुआ अन्न को न खाना चाहिये । इत्यादि–इसलिये प्रत्येक भक्ष्य के गुण दोष की परीक्षाकर नियत समय पर खाना चाहिये ॥ क्योंकि—

अप्राप्तकाले भुंजानो ह्यसमर्थतनुर्नरः ।
तांस्तान् व्याधीन वाप्नोति मरणंचाधिगच्छति ॥१५१
कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनोपहतेऽनले ।
कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनःस्पृहा१५२
भा० प्र० प्र० ४

जो नियत समय से प्रथम ही भोजन करलेता है, उसका शरीर असमर्थ होजाता है। इससे सिर दरद विसूचिका आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं, जिनके बढ़जाने से मृत्यु भी होजाती है॥१५१

और जो समय से बहुत पीछे खाता है, उसका अग्नि वायु से नष्ट होजाता है। भोजन किया हुआ कठिनता से पचता है। और पुनः खाने की इच्छा नहीं होती ॥

—o—

ॐ भोजन का समय ॐ

—:o:—

विद्वानों ने मुख्यतया भोजन के दो समय नियत किये हैं। प्रातःकाल और सायंकाल ॥ यथा—

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

सायंप्रातर्मनुष्याणामशनंश्रुतिबोधितं । नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमोविधिः ॥ ११५ ॥ याममध्येनभोक्तव्यं द्वितीयंनविलंघयेत् । याममध्येरसोत्पत्तिर्यामियुग्माद्बलक्षयः ॥ ११६ ॥ भा० अ० प्र० खं १

प्रातःकाल और सायंकाल में भोजन करना शास्त्र की आज्ञा है । इनके मध्य में भोजन न करे क्योंकि यह विधि अग्निहोत्र के तुल्य है ॥ ११५ ॥ प्रातःकाल प्रथम प्रहर में न करे, और दूसरे प्रहर में भूखा न रहे । प्रथम प्रहर में खाने से रसाजीर्ण की उत्पत्ति होती है । और दूसरे में न खाने से बल का क्षय होता है । अतएव मनु० अ० २ में (व्यायाममाप्लुत्य मध्यान्हेभोक्तुमन्तः पुरं विशेदिति)

और शाम को प्रथम प्रहर में । यथा (रात्रौतुभोजनंकुर्यात् प्रथम प्रहरान्तरे) ॥ इति ॥ यद्यपि भोजन की एकता के लिये यही दो समय नियत हैं । परन्तु इसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि मध्य में भूख लगने पर भी न खावे ॥

क्षुत्संभवाति पक्केषुरसदोषमलेषुच ।
कालेवा यदिवाकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥

भा० प्र० अ० ४ खं० १ ॥

रस दोष और मलके पक जाने से भूख लगती है । इसलिये जब भूख लगे वही खाने का समय है अर्थात् उसी समय खा लेना चाहिये । क्योंकि जो भूख लगने पर नहीं खाते उनकी जठराग्नि मंद होजाती है ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

अतः—नियत समय पर युक्ति पूर्वक अछी तरह से पकाये हुए दोष रहित अन्न को सुन्दर एकान्त स्थान में बैठ कर खाना चाहिये देखो सु० सू० अ० ४६ ॥

—०—

* भोजन करने का क्रम *

अश्नीयात तन्मनाभूत्वा पूर्वंतुमधुरं रसं ।
मध्येऽम्ललवणौपश्चात् कटुतिक्तकषायवान् ॥
भा० प्र० अ० ४ ॥

प्रसन्न वदन और दत्त चित्त होकर प्रथम मधुर रस खावे मध्य में खट्टा क्षारा और पीछे कटु क्योंकि प्रथम मधुर रस खाने से वायु और पित्त की शान्ति होती है मध्य में खट्टा पित्ताशय में अग्नि की वृद्धि होती है। अंत में कटु कसैला खाने से कफ की शान्ति होती है ॥

अंत में लवण युक्त पानी से कुल्ला करना चाहिये इससे दान्त का रोग नहीं होता ॥

भुक्त्वाराजवदासीत यावन्नक्लमोगतः ।
ततः पदशतंगत्वावामपार्श्वेंतु संविशेत् ॥ ४१ ॥
शब्दरूप रसान् गंधान् स्पर्शांश्च मनसः प्रियान् ।
भुक्त्वान्नंतु सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ ४२ ॥
सु०सू० अ० ४६ ॥

भोजन करके राजा के तुल्य बैठे कुछ देर बैठे अनंतर सौ कदम चलकर वाम पार्श्व में सोवे। और मन भावते रूप रस गंधादि का सेवन करे इस प्रकार अन्न अछी तरह पचता है ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

न चैक रस सेवायां प्रसज्येत कदाचन ।

सु० सू० अ० ४६ ॥

सदैव एक ही रस का सेवन न करे । अर्थात् वदल २ कर खाना चाहिये ॥

प्राग्भुक्ते त्वविविक्तेऽग्नौ द्विरन्नं न समाचरेत् ॥
पूर्वभुक्तेऽविदग्धे भुंजानोहंति पावनम् ॥

सु० सू० अ० ६४

प्रथम भोजन किये अन्न के न पचने पर अन्न नहीं खाना चाहिये, इससे जठराग्नि नष्ट होजाता है ॥

जठरं पूरयेदर्द्धमन्नैर्भागंजलेनत्र ।
वायोः संचारणार्थन्तु चतुर्थ मवशेषयेत् ॥

आधा पेट अन्न से भरे । चौथा भाग जल से और चौथा भाग वायु के संचारार्थ छोड़े ॥

अनन्तर नियत समय पर सोना चाहिये ॥

प्रथम निद्रा का स्वरूप क्या है ।

जब मन (थक) जाता है तब कर्मेन्द्रिय भी परिश्रम से विषयों से बिरक्त होजाते हैं उस समय निद्रा आजाती है॥च.सू.अ.२१

सुख, दुःख, स्थूलता, कृशता, बल, दुर्बलता, पुंस्त्व, क्लीवत्व, ज्ञान, अज्ञान, जीवन, मरण यह सब निद्रा के आधीनं हैं॥च०सू०अ०२१

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रानिषेविता ।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालोषेवागतानरम् ॥

च० सू० अ० २१

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

कुसमय सोने से, अधिक सोने से, और सर्वथा न सोने से मनुष्य के सुख और आयु, काल रात्रि के उषाकाल की न्याईं नष्ट होजाते हैं ॥

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखा युषा ।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्याबुद्धिरिवागता ॥

च० सू० अ० २१

उसी निद्रा के योग्य रीति से सेवन करने से, सुख और दीर्घायु प्राप्त होते हैं । जैसे योगिकी सिद्धि से सद्बुद्धि ॥

पुष्टि वर्णबलोत्साहमग्निदीप्तिमतंद्रितां ।
करोतिसाधुसाम्यंच निद्रा कालेनिषेविता ॥

सु० चि० अ० २४ ॥

नियत समय पर सोने से पुष्टि, रूप, बल, उत्साह, और जठराग्नि की वृद्धि होती है। आलस्य दूर होता है। सोना सब दोषों को स्वच्छ और समान करता है ॥

देह वृत्तौ यथाहारस्तथा स्वपनः समासतः ।
स्वपनाहार समुत्थेच स्थौल्यकार्श्यें विशेषतः ॥

च० सू० अ० २१ ॥

शरीर रक्षा के लिये जैसे आहार उपयोगी है, वैसे ही निद्रा भी। स्थूल और कृशता में आहार और निद्रा ;यह दोनों ही विशेषकर उपयोगी हैं ॥

विवेचन करने से प्रतीत होता है कि ६ से आठ घण्टा तक सोना उचित है ॥ अतएव—

(सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः) वसिष्ठ० सू० १८

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

वह पापी और दरिद्री है, जो सूर्योदय पर्यन्त सोता रहता है। अथवा सूर्य होते ही सोजाता है॥

विना विशेष कारणों के दिन में सोने का निषेध है॥

यथा। प्रबोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु रेवदुच्छ मघवद्भ्योमघोनि। रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती॥ ऋ० मं० १ अ० १८ सू० १२४

हे ऐश्वर्य युक्त स्त्री तू प्रातःकाल में सोने वालों को जगा। और इस अनुष्ठान मे उन्हें उत्तम धन युक्त करा। भावार्थ यह है कि प्रत्येक को प्रभात में ही उठकर पुरुषार्थ मे धर्म धनादि का अनुष्ठान करना चाहिये॥

इसमें सम्पूर्ण वैद्य सहमत हैं कि विना विशेष कारण के दिन में सोना हानीकारक है, देखो० च० सू० अ० १२१।

"दिन में सोने मे हलीमत, शूल, स्तिमिता आदि दोष उत्पन्न होते हैं॥ संक्षेप से—

कुचेलिनं दन्तमलावधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुर वाक्य भाषिणं। सूर्योदयेह्यस्तमयेच शायिनं, विमुञ्चतिश्री रपिचक्रपाणिनम्॥

(इति शुभम्)

रामचन्द्र दत्तः।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative

विज्ञापन

उन्नति के शेष चार भाग

अर्थात्

२ विद्योन्नति ३ आर्थिकोन्नति ४ धार्मिकोन्नति और ५ सामाजिकोन्नति, दिये गए हैं छापने के लिये जिनका विवर्ण शास्त्रों के आधार पर भलिभांति किया गया है जैसे:—

विद्योन्नति में

१ शिक्षा की आवश्यक्ता २ शिक्षा में माता पिता का कर्तव्य।

३ बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा।

४ प्राचीन समय में शिक्षा का प्रबन्ध।

५ वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली।

६ विनामूल के शिक्षा।

७ शिक्षा कैसी हो और किन के हाथ में हो इत्यादि।

रामचन्द्र

मिलने का पता—पुस्तकाध्यक्ष

आर्य सामाज

अनारकली लाहौर।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. An eGangotri Initiative